Vol. 5, Issue: 6, June: 2017
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

नामवर सिंह की आलोचना पद्धति

प्रो. रश्मि कुमार
हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

संक्षिप्त सारः

नामवर सिंह ने अपना आलोचकीय जीवन 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' से आरंभ किया था। इसमें अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच–बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण एवं सुचिंतित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। इसमें अपभ्रंश साहित्य की कतिपय महत्वपूर्ण रचनाओं का परिचय देते हुए उनके सौंदर्य पक्षों का उद्घाटन किया गया है। उनके अनुसार भावधारा के विषय में अपभ्रंश से हिंदी का जहाँ केवल ऐतिहासिक संबंध है, वहाँ काव्य रूपों और छंदों के क्षेत्र में उस पर अपभ्रंश की गहरी छाप है।सिद्धों की रचनाओं के विषय में उनका विचार है कि कुल मिलाकर सिद्धों की रचनाओँ में जीवन के प्रति बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण है।छायावाद' नामक कृति में नामवर जी ने छायावाद की काव्यगत विशेषताओँ को स्पष्ट करते हुए उसमें निहित सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन किया। यह प्रगतिवादी आलोचना के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। १२ अध्यायों में विभक्त इस कृ ति में विभिन्न अध्यायों के विवेच्य विषयों को सूचित करने के लिए जो शीर्षक दिए गए हैं, उनमें से अधिकांश छायावादी कवियों की काव्य–पंक्तियों के ही टुकड़े हैं। शीर्षकों से ही स्पष्ट है कि विवेचन में छायावादी काव्य वस्तु से सैद्धांतिक निष्कर्ष तक पहुँचा गया है। यहाँ पर गुण से नाम की ओर बढ़ा गया है तथा नामकरण की सार्थकता इस विशिष्ट काव्यधारा की काव्य–संपत्ति के आधार पर निश्चित की गयी है।

शब्द संकेत : *आलोचकीय , छायावाद, काव्यगत ,सकारात्मक, दृष्टिकोण, सैद्धांतिक*

१. विषय प्रवेश

नवीन कहानी कला की समीक्षा प्रगतिवादी हिंदी आलोचना के एक समर्थ हस्ताक्षर के रूप में डॉ. नामवर सिंह का नाम लिया जाता है। उन्होंने आदिकालीन साहित्य से लेकर नए से नए हिंदी कवियों व लेखकों को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। वे पृथ्वीराज रासो से लेकर मुक्तिबोध और धूमिल तक की लंबी और विशाल काव्य परंपरा को आत्मसात कर उसकी सम्यक् समीक्षा करते थे । इनके लेखन का आरंभ अपभ्रंश से होता है किंतु नयी कविता और समकालीन साहित्य पर भी सर्वाधिक सशक्त टिप्पणी करने वालों में वे अग्रणी रहे।नामवर सिंह ने अपना आलोचकीय जीवन 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' से आरंभ किया था। इसमें अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच–बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण एवं सुचिंतित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। इसमें अपभ्रंश साहित्य की कतिपय महत्वपूर्ण रचनाओं का परिचय देते हुए उनके सौंदर्य पक्षों का उद्घाटन किया गया है। उनके अनुसार भावधारा के विषय में अपभ्रंश से हिंदी का जहाँ केवल ऐतिहासिक संबंध है, वहाँ काव्य रूपों और छंदों के क्षेत्र में उस पर अपभ्रंश की गहरी छाप है।सिद्धों की रचनाओं के विषय में उनका विचार है कि कुल मिलाकर सिद्धों की रचनाओँ में जीवन के प्रति बहुत सकारात्मक

दृष्टिकोण है। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश के उद्धृत दोहों की नामवर जी ने संदर्भ देते हुए ऐसी मार्मिक व्याख्या की है कि तत्कालीन समाज का नितांत आत्मीय रूप हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' के पाठशोध में हजारी प्रसाद द्विवेदी का सहयोग करने के साथ–साथ नामवर सिंह ने रासो संबंधी कुछ लेख भी उसी पुस्तक में जोड़ दिए हैं (पृथ्वीराज रासो : भाषा और साहित्य)। यद्यपि ये लेख परिचयात्मक ही हैं फिर भी एकाध स्थलों पर लेखक की सहृदयता, रस–ग्राहिकी और आलोचकीय क्षमता का पता चलता है। इन दो पुस्तकों में डॉ. नामवर सिंह के आलोचक रूप की अपेक्षा उनका शोधकर्ता, इतिहासकार रूप अधिक उभरता है। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास की एक नवीन दृष्टि, मार्क्सवादी दृष्टि से देखने–समझने की शुरुआत यहाँ से हो जाती है।

२. काव्यगत विशेषता

'छायावाद' नामक कृति में नामवर जी ने छायावाद की काव्यगत विशेषताओँ को स्पष्ट करते हुए उसमें निहित सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन किया। यह प्रगतिवादी आलोचना के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। १२ अध्यायों में विभक्त इस कृति में विभिन्न अध्यायों के विवेच्य विषयों को सूचित करने के लिए जो शीर्षक दिए गए हैं, उनमें से अधिकांश छायावादी कवियों की काव्य–पंक्तियों के ही टुकड़े हैं। शीर्षकों से ही स्पष्ट है कि विवेचन में छायावादी काव्य वस्तु से सैद्धांतिक निष्कर्ष तक पहुँचा गया है। यहाँ पर गुण से नाम की ओर बढ़ा गया है तथा नामकरण की सार्थकता इस विशिष्ट काव्यधारा की काव्य–संपत्ति के आधार पर निश्चित की गयी है। किसी वाद पर हिंदी में इस वैज्ञानिक और निगमनात्मक ढंग से पहली बार विचार किया गया है। इसे रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद और छायावाद नाम से अभिहित किया गया है। इसमें छायावाद की विभिन्न विशेषताओं, रचनाओं, रचनाकारों का विधिवत विवेचन किया गया है।छायावाद की अन्यतम कृति 'कामायनी' की प्रतीकात्मकता एवं रूपकत्व पर नामवर सिंह ने विचार किया है। इन्होंने कामायनी के रूपकत्व के सामाजिक आयाम पर विचार करते हुए कहा है कि 'इसमें आधुनिक समस्याओँ पर भी विचार किया गया है'। कामायनी में व्यंजित प्रतीकों को लेकर नामवर सिंह कहते हैं कि ''देवसंपन्नता का ध्वंस वस्तुतः हिंदू राजाओं और मुसलमान नवाबों तथा मुगल बादशाहों के विध्वंस का प्रतीक है। हिमसंस्कृति प्राचीन जड़ता तो उषा नवजागरण की प्रतीक है। मनु देव–सभ्यता का प्रतीक है, कुमार प्रजातांत्रिक सभ्यता का। देवासुर संग्राम आत्मवाद एवं बुद्धिवाद के संघर्ष का प्रतीक है। इस प्रकार प्रसाद ने कामायनी में आधुनिक भारतीय सभ्यता के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण किया है। यह भारत की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य है।''

नामवर सिंह ने निराला की लंबी कविताओं 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्तिपूजा' का विश्लेषण अत्यंत सहृदय और भाषिक सर्जनात्मकता के स्तर पर किया है। कथा–साहित्य में प्रेमचंद तथा उनके समकालीनों ('प्रेमचंद और भारतीय समाज') के साथ ही साथ उन्होंने नई कविता के तर्ज पर नई कहानी ('कहानी : नई कहानी') के तमाम कथाकारों का भी सहानुभूति एवं संवेदना के धरातल पर विश्लेषण–मूल्यांकन किया है। सिद्धांत निरुपण संबंधी उनकी विशिष्ट प्रतिभा 'कविता के नए प्रतिमान' में दृष्टिगत होती है। इस पुस्तक के प्रथम खंड में उन्होंने प्रतिष्ठित काव्य प्रतिमानों की विस्तृत आलोचना करते हुए उनकी सीमाएँ बतायी हैं, तथा द्वितीय खंड में नई कविता के संदर्भ में काव्य–प्रतिमानों के प्रश्न को नए सिरे से उठाया गया है।'कविता के नए प्रतिमान' में नामवर जी ने मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' की समीक्षा कर सबके लिए समीक्षा का द्वार खोल दिया। उनके अनुसार 'अंधेरे में' का मूल कथ्य अस्मिता की खोज है। अस्मिता की अभिव्यक्ति को परम अभिव्यक्ति से जोड़ते हुए नामवर जी ने कवि मुक्तिबोध के लिए अस्मिता की खोज को अभिव्यक्ति की खोज माना है। एक कवि के लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है। मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष के

साथ–साथ बाह्य सामाजिक संघर्ष को भी स्वीकार किया है। आत्म–संघर्ष की परिणति अंततः सामाजिक संघर्ष में होती है। उन्होंने रामविलास शर्मा की 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में व्यक्त मान्यताओं को चुनौती देते हुए मुक्तिबोध जैसे कवियों के साहित्यिक मूल्य को पुनर्स्थापित किया। परंपरा संबंधी रामविलास शर्मा की स्थापनाओं ('परंपरा का मूल्यांकन') से टकराने के क्रम में उन्होंने 'दूसरी परंपरा की खोज' का व्यवस्थित प्रयास किया।

३. कविता के प्रतिमान

नई कविता के संदर्भ में नए काव्य प्रतिमानों का प्रश्न उठाते हुए नामवर सिंह लिखे हैं – ''कविता के प्रतिमान को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से आत्मपरक नई कविता की दुनिया से बाहर निकलकर उन कविताओं को भी विचार की सीमा में ले आना आवश्यक है जिन्हें किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में सामान्यतः 'लंबी कविता' कह दिया जाता है।'' कविताओँ के इस आत्मपरक वर्ग के विरुद्ध उन्होंने मुक्तिबोध की लंबी कविताओं का उदाहरण देकर सामाजिक वस्तुपरक काव्य मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया। ये कविताएँ अपनी दृष्टि में सामाजिक और वस्तुपरक हैं और आज के ज्वलंत एवं जटिल यथार्थ को अधिक से अधिक समेटने के प्रयास में कविता को व्यापक रूप में नाट्य–विचार प्रदान किये हैं और इस तरह तथाकथित बिंबवादी काव्यभाषा के दायरे को तोड़कर सपाटबयानी आदि अन्य क्षेत्रों में कदम रखने का साहस दिखाये हैं। नामवर सिंह की आलोचकीय ख्याति अपेक्षाकृत काव्य–आलोचना के क्षेत्र में अधिक रही। जिन काव्य–मूल्यों का प्रश्न उन्होंने उठाया, उनमें भावबोध से लेकर काव्यभाषा तक के स्तर तक काव्य–सृजन को एक सापेक्ष इकाई के रूप में देखने का प्रयास है जिसमें रचना के निर्माण में एक विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक परिवेश के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। उन्हें वाचिक परंपरा का मूर्धन्य आलोचक भी माना जाता है। सभा–गोष्ठियों में दिये गए उनके व्याख्यानों को ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवा दिया गया। 1959 के एक व्याख्यान में उनकी कही यह बात आज भी प्रासंगिक है, ''आधुनिक साहित्य जितना जटिल नहीं है, उससे कहीं अधिक उसकी जटिलता का प्रचार है। जिनके ऊपर इस भ्रम को दूर करने की जिम्मेदारी थी, उन्होंने भी इसे बढ़ाने में योग दिया।'' यहां वे 'साधारणीकरण' की चर्चा करते हुए कहते हैं, ''नए आचार्यों ने इस शब्द को लेकर जाने कितनी शास्त्रीय बातों की उद्धरणी की, और नतीजा? विद्यार्थियों पर उनके आचार्यत्व की प्रतिष्ठा भले हो गई हो, नई कविता की एक भी जटिलता नहीं सुलझी।''नामवर सिंह ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के संबंध में भी अपना प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'साहित्यिक इतिहास क्यों और कैसे?' निबंध में हिंदी साहित्य के इतिहास को फिर से लिखे जाने की आवश्यकता बताई है। 'इतिहास और आलोचना' के अंतर्गत उन्होंने 'व्यापकता और गहराई' जैसे महत्वपूर्ण काव्य–मूल्यों को परस्पर सहयोगी बताने का मौलिक साहस दिखाया जबकि इन दोनों को परस्पर विरोधी गुणों के रूप में स्वीकार किया गया था। देखा जाय तो नामवर सिंह प्रगतिशील आलोचना की ऐसी पद्धति विकसित करते हैं जो रामविलास शर्मा की स्थापनाओं से जूझते हुए उसका विस्तार भी करती है।

उनके अंतःविषय ज्ञान की विशालता, कुछ नया करने की उनकी क्षमता और उनके लेखन की भव्यता का हिंदी में कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था।आलोचना को नीरस अकादमिक कार्य माना जाता है और आमतौर पर आलोचकों के उतने प्रशंसक नहीं होते जितने कलाकारों के होते हैं, लेकिन नामवर सिंह इसके अपवाद थे। पिछले 50 वर्षों में हिन्दी पत्रों में इससे अधिक चर्चित व्यक्तित्व शायद ही कोई रहा हो। उनकी रचनाओं में छायावाद, इतिहास और आलोचना, कहानी नई कहानी, कविता के नए प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, वाद विवाद संवाद, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान और आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ जैसी पुस्तकें शामिल हैं, साथ ही निबंधों के आठ संग्रह भी

शामिल हैं। व्याख्यान का संपादन आशीष त्रिपाठी ने किया। इसे शायद ही विपुल कहा जा सकता है। फिर भी, उन्हें हिंदी का अग्रणी आलोचक माना जाता था, जिसका कारण उनकी अधिकारपूर्ण बहस शैली, बदलते रचनात्मक परिदृश्य से उनका अटूट जुड़ाव और अपने ज्ञान को अद्यतन रखने की उनकी मुहिम थी। उन्होंने एक साक्षात्कार में ठीक ही कहा था, ''आप मुझ पर बहुत कम लिखने का आरोप लगा सकते हैं, लेकिन आप यह नहीं कह सकते कि जब पढ़ने की बात आती है तो मैं ढीला पड़ गया हूं।''1970 के दशक में सिंह ने आलोचना की भाषा के बारे में कहाः

४. भाषा की भूमिका

"भाषा को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार करना अब कठिन हो गया है, क्योंकि अब हम देख सकते हैं कि भाषा, अभिव्यक्ति का माध्यम होने से पहले, सबसे पहले धारणा का माध्यम है, और इस तरह हमारी धारणा को नियंत्रित और व्यवस्थित करती है। जिस अनुभव को हम अपना मानते हैं और व्यक्तिगत रूप से खोजते हैं, उसमें से कितना वास्तव में हमारा अपना है और कितना एक सामान्य भाषा का परिणाम है, उस प्रश्न पर विचार करना किसी भी विचारशील व्यक्ति को पागल करने के लिए पर्याप्त है।उस समय हिंदी के किसी अन्य लेखक ने, मेरी याद में, दुनिया के साथ हमारे संबंधों में केंद्रीय संपर्क के रूप में भाषा की भूमिका के बारे में नहीं लिखा था।इसके अलावा, मैं सिंह के अलावा किसी अन्य लेखक को नहीं जानता जिसने 1961 में उत्तर–आधुनिकतावाद का उसके 'सिद्धांतों' के साथ वर्णन किया हो। उसी वर्ष उनका एक निबंध, 'फिर क्या हुआ?''और मुक्तिमार्ग', नई कहानियाँ में प्रकाशित हुआ । इसमें सिंह ईएम फॉरेस्टर की ' कथानक' और 'कहानी' की अवधारणा से असहमत थे। ''यह संभव है कि जिसे आधुनिकतावादी कहानी कहा जाता है, उसमें कार्य–कारण आवश्यक है, लेकिन उत्तर–आधुनिक कहानी में, कार्य–कारण सामान्यतः लुप्त हो जाता है, और अधिक से अधिक अप्रत्यक्ष रूप से संकेत मिलता है,''उन्होंने लिखा। कार्य–कारण–आधारित कथानक को आधुनिकता, विज्ञान और बौद्धिक विकास से जोड़ते हुए–और इसके कई योगदानों को स्वीकार करते हुए–उन्होंने बताया कि ''कार्य–कारणवादी स्थिति ने स्वयं अपनी परंपराओं को विकसित किया है'' और ''एक बार फिर, कहानी आधुनिकतावादी के खिलाफ प्रतिक्रिया कर रही है'' कार्य–कारण की ओर बढ़ो''।मैं इसका जिक्र इस बात पर प्रकाश डालने के लिए कर रहा हूं कि कैसे नामवर सिंह दुनिया के अन्य हिस्सों में हो रहे साहित्यिक और बौद्धिक विकास से अच्छी तरह परिचित थे और अपनी आलोचनात्मक दृष्टि को बढ़ाने के लिए उनका उपयोग करने में सक्षम थे। उनके हाथों में, मार्क्सवादी आलोचना महज अपरिष्कृत समाजशास्त्रीय विश्लेषण से कहीं अधिक थी। लेकिन इसी कारण उन पर मार्क्सवादी न होने का आरोप लगाया गया। 1969 में कविता के नये प्रतिमान में प्रकाशित मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' पर अपनी टिप्पणी में, सिंह ने कविता के कथाकार–नायक को आत्म–अलगाव का शिकार बतायाय जवाब में, उन पर अस्तित्ववादी शब्दावली और अवधारणाओं का उपयोग करने का आरोप लगाया गया।

पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रकाशित उन आरोपों पर सिंह की प्रतिक्रिया पढ़ने लायक है। वह उन मार्क्सवादियों को सूचित करता है जो 1844 की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियों के मार्क्स से अनजान थे, अलगाव और आत्म–अलगाव की अवधारणाओं के व्यापक दायरे के बारे मेंय पूंजीवाद मनुष्य का न केवल आर्थिक शोषण करता है, बल्कि उसका अमानवीयकरण भी करता है। अपनी स्वयं की कृतियों से अलगाव, जीवन जीने के तरीके के रूप में श्रम से अलगाव और परिणामस्वरूप, स्वयं से अलगाव, मार्क्स की प्राथमिक चिंताएँ थीं।इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि लोगों को इतिहास और आलोचना के अलावा सिंह के लेखन को मार्क्सवादी के रूप में वर्गीकृत करना मुश्किल लगता है – कुछ सिंह से मार्क्सवाद को बचाना चाहते हैं, और अन्य सिंह को मार्क्सवाद से बचाना चाहते हैं।दोनों प्रयास इस मायने में गुमराह हैं कि वे मार्क्सवादी साहित्यिक

दृष्टि के पूर्वनिर्धारित विचार पर भरोसा करते हैं, जबकि साहित्य के बारे में पढ़ने और सोचने के नए तरीके मार्क्सवादी दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण की गर्मी और रोशनी में लगातार गढ़े जा रहे हैं और नए सिरे से गढ़े जा रहे हैं।

५. आलोचना

यदि प्रगति"ील आलोचना को जातीय और हिन्दी पाठकों की दृष्टि में वि"वसनीय बनाने का कार्य डॉ. रामविलास शर्मा ने किया है तो उसे सक्रिय आन्दोलन के रूप में जीवित रखने और हिन्दी भाषी बुद्धिजीवी युवकों में तत्सम्बन्धी रूचि जाग्रत करने का कार्य डॉ. नामवर सिंह करते रहे हैं। हिन्दी की नव्यतम् रचनाओं के आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने अपना समीक्षक जीवन हिन्दी के विकास में अपभ्रं"ा का योग से शुरू किया। किन्तु चिन्तक एवं समीक्षक होने की कीर्ति निम्नलिखित कृतियों से मिली।

६. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ

यह नामवर सिंह की पहली समीक्षा कृति है। इसमें छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर विस्तृत विवेचन है। वे प्रगति"ील साहित्य के प्रबल समर्थक हैं। प्रगतिवाद के विषय में वे कहते हैं–''प्रगतिवाद हिन्दी में अपने समय से पैदा हुआ, ऐसे समय जब हिन्दी साहित्य और जाति की जमीन उसके अनुकूल हो गयी थी। वे समाज को दो वर्गो में देखते हैं–एक शोषक वर्ग दूसरा शोषित वर्ग। वह साहित्य को वर्ग से जोड़ कर देखते हैं और मानते हैं कि–''साहित्य को और श्रेष्ठ साहित्य को जनता का पथ–धर्म लेकर चलना चाहिये। यह पक्ष धरता इसलिये अनिवार्य है कि समाज में दो स्वार्थों का सघंर्ष है। मानवता शोषित के साथ जुड़कर चलती है। अतः मानवतावादी लेखन सदैव ही शोषित का पक्षपाती होता है।

डॉ. नामवर सिंह कहानी के रूप पर भी विचार करते हैं। जिस तरह से आधुनिकता में कहानी का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। वे उसके ि"ल्पगत वै"ि"ष्टय को सुरक्षित रखना चाहते हैं। वे कहते हैं–''नये भाव–सत्य के अनुसार कहानी का रूप बदलता जरूर है, लेकिन इतना नहीं बदलता कि वह कहानी ही न रह जाए। कहानी का रूप कहानी के भीतर ही बदला जा सकता है, जैसा कि समय पर महान से महान कहानीकारों ने किया है। कहानी का विधागत वै"ि"ष्टय उसका कहानीपन है। नामवर जी इस कहानीपन के प्रबल पक्षधर हैं। कविता चाहे जिस हद तक छन्द मुक्त हो जाए लेकिन वह लययुक्त नहीं हो सकती। लय मुक्त रचना काव्य होते हुए भी कविता नही कहलायेगी। लेकिन वे कहानीपन का मतलब किसी किस्से या आख्यान को नहीं मानते। वे कहानी की अपेक्षा कथानक को अधिक महत्व देतें। कहानी में कार्य कारण की श्रृंखला की जगह कौतूहल देखना चाहते हैं। वाद विवाद संवाद–यह विभिन्न जगहों पर दिए गए भाषणों एवं निबन्धों का संकलन मात्र है। इसकी भूमिका में डॉ. सिंह लिखते हैं–''आलोचना कर्म वाद विवाद नहीं तो और क्या है ? लेखक आलोचक के बीच आलोचक–आलोचक के बीच। मौखिक हो या लिखित हो। प्रस ंगव"ा इस पुस्तक का पहला लेख मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' पर ही है। पच्चीस वर्षों की लम्बी अवधि के बीच यत्र–तत्र प्रका"ित निबन्धों को एक जगह बटोरना और फिर चुनना ही दूभर है, फिर स्मृति को खरोच–खरोचकर उस अवसर का विवरण देने में तो कचूमर ही निकल जाए। इसमें कुल 19 निबन्धों का संग्रह है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वाद विवाद संवाद उनकी सद्यः प्रका"ित पुस्तक है। इसमें उनके 1964–1988 के बीच लिखे गये निबन्ध और भाषण हैं। यह उनकी चर्चित पुस्तक इतिहास और आलोचना की अगली कड़ी है। इसमें आए हुए निबन्ध जब पहली बार प्रका"ा में आये थे, तब उन पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी थी। इस प्रकार जब एक साथ पुस्तक के रूप में ये निबन्ध दुबारा आये तो पाठकों में कोई उत्तेजना नहीं हुई जैसी अपेक्षा नामवर सिंह के लेखन से

थी। यह पुस्तक उनके चिन्तन का समाहार है। इसका सम्पादन एवं संकलन इनकी पूत्री समीक्षा ठाकुर ने किया।

डॉ. नामवर सिंह की एक पुस्तक हैं इतिहास और आलोचना। इसमें कई लेख तो 'आलोचना' के तत्कालीन सम्पादकीयों में प्रकट हुए विचारों की निस्सारता दिखाने के लिखे गए हैं। ऐसे लेखों में व्यापकता और गहराई महत्वपूर्ण हैं। इसमें बताया गया है कि व्यापकता और गहराई रचनाओं में साथ–साथ होती है। वे परस्पर विरोधी न होकर अन्योन्याश्रित हैं। अन्य निबन्धों में प्रसाद की भाषा, कामायनी के प्रतीक तथा इतिहास और आलोचना महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में व्यापकता और गहराई एक ही सिक्के के दो पहले हैं। जिन्हें पृथक नहीं किया जाता सकता। सामाजिक यथार्थ की पृष्ठ भूमि के बिना किसी भी लेखक में गहराई नहीं आ सकतीूति और गहराई का निर्णय दिक और काल सापेक्ष है। दूसरी परम्परा की खोज – डॉ. नामवर सिंह की यह पुस्तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति और साहित्य की उस लोकोन्मुखी क्रान्तिकारी परम्परा को खोजने का सर्जनात्मक प्रयास है, जो कबीर के विद्रोह के साथ ही सूरदास के माधुर्य और बलिदान के लालित्य से रंगारंग है। आठ अध्यायों की इस अष्टाध्यायी के प्रत्येक अध्याय का प्रस्थान बिन्दु आचार्य द्विवेदी जी की कोई न कोई कृति है। यह पुस्तक न उनकी कृतियों की व्याख्या है और न उसके मूल्यांकन का प्रयास बल्कि डॉ. नामवर सिंह द्वारा उस मौलिक इतिहास दृष्टि के अन्वेषण को पकड़ने की कोि"ा"ा की गयी है। जिसके आलोक में समूची परम्परा एक नये अर्थ के साथ उद्भाषित हो उठी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के सम्बन्ध में बताते हैं कि जब पण्डित जी शान्तिनिकेतन पहुँचे तो इसे वे द्विजत्व प्राप्ति का दिन मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोचना कितनी सजीव हो सकती है, दूसरी परम्परा खोज की प्रसन्न भाषा शैली इसका प्रतिष्ठित उदाहरण है। नामवर जी की यह कृति द्विवेदी जी के इस कथन को पूरी तरह चरितार्थ करती है। कि पण्डिताई जब जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है और वह बोझ भी नहीं रहती। यह संहज रचना नामवर सिंह के कृतित्व व्यक्तित्व का परिचय पत्र है। नामवर जी की समीक्षा शैली मार्क्सवादी है और उसी के अनुरूप वह पूर्ववर्ती समीक्षा के उन सभी औजारों को काम में लाती है जो आज भी साहित्य की व्याख्या और मूल्यांकन के लिये उपयोगी हैं। उनकी समीक्षा हिन्दी की महत्वपूर्ण समीक्षा की कड़ी है। स्वभावतः वह आचार्य रामचन्द्र"ाुक्ल और रामविलास शर्मा की विरासत को समेटकर चलती है।

निस्संदेह, सिंह के आलोचनात्मक लेखन और व्याख्यानों में एकरूपता का अभाव है। उनके विभिन्न विचार अक्सर एक–दूसरे से टकराते हैं, लेकिन जब कोई व्यक्ति हमेशा खुद को दोबारा परखता है तो वह उस गलती से बच नहीं सकता है। जो लोग एक ही दार्शनिक स्थिति पर टिके रहते हैं उनके विचार अरुचिकर होने की हद तक जड़ हो जाते हैं। एकरूपता का अभाव–व्यक्तिगत कार्यों में नहीं बल्कि संपूर्ण कृति में–खुलेपन और शुद्धता का प्रमाण है। इस विचित्र द्वैतवाद का किसी को क्या करना चाहिए कि एकरूपता का अभाव शुद्धता और बेईमानी दोनों का प्रतीक है?फिर भी, द्वैतवाद संभवतः उतना अजीब नहीं है। कम्युनिस्ट घोषणापत्र का वह हिस्सा याद आता है जिसमें पूंजीवाद के तहत समग्र परिवर्तनों को एक साथ शानदार और भयावह दोनों बताया गया है, जैसे दो अलग–अलग कोणों से देखी गई एक तस्वीर।जेएनयू में स्थायी नौकरी से पहले उनका संघर्ष एक सबक की तरह उनके साथ रहा और सत्ता के पदों पर बने रहने के प्रलोभन ने उनकी तेज बुद्धि को हिंदी में उतना योगदान देने से रोक दिया जितना वे कर सकते थे (उस प्रलोभन के अभाव में)। लेकिन नामवर सिंह ने जो योगदान दिया, कोई भी औसत योग्यता वाला व्यक्ति उसकी बराबरी नहीं कर सकता–चाहे उन्होंने कितना भी प्रयास किया हो।

७. अध्ययन पद्धति

यह आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषण पर आधारित है। साथ ही ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति के आधार पर विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों एवं पुस्तकालयों से तथ्यों का संकलन किया गया है । वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर ही आधारित है।

८. निश्कर्श

इनकी समीक्षा की भाषा 'सामान्य भाषा' का भी उन्मुक्त रूप है। उसमें सादगी और पैनापन है गजब की हार्दिकता भी है। नामवर जी की आलोचना शास्त्रीय आलोचना की तरह, सांगोपांग और तार्किक परिणतियों तक ले जाने वाली और सृजनात्मक आलोचना की तरह मौलिक एवं नवीन है। हिन्दी की मार्क्सवादी समीक्षा का एक अं"ा खण्डन मण्डन परक रहा है। नामवर जी ने उनके विपरीत समीक्षा में सहयोगी प्रयास को महत्व दिया है, जिसमें समीक्षक आपकी निजी प्रतिक्रिया के साथ ही स्वयं आलोचय कृति को सामने रखते हुए समानधर्मी पाठक एवं समीक्षक को विचार विनिमय के लिये निमंत्रित करता है और प्रतिक्रियाओं के द्वन्द्व से निर्णय तक पहुँचता है। इस तरह दृष्टिगत होता है कि प्रगतिवादी समीक्षा को डॉ. नामवर सिंह ने अपनी नीर–क्षीर विवेकी समीक्षा दृष्टि से समृद्ध एव वैभव"ाली बनाया है। इनके अनन्त योगदान को चिरकाल तक भुलाया नहीं जा सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. पचौरी, सुधी"ा (1995).नामवर के विम"र्ा, प्रवीण प्रका"ान, नई दिल्ली ।
२. नवल, नन्द कि"ोर (2003). हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली ।
३. त्रिपाठी, वि"वनाथ (1982).हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली ।
४. डॉ. नगेन्द्र (1987). हिन्दी साहित्य का इतिहास, ने"ानल पब्लि"िंग हाउस, दिल्ली ।
५. मिश्रा, डॉ. ि"ावकुमार (1994). हिन्दी आलोचना की परम्परा और रामचन्द्र शुक्ला, वाणी प्रका"ान,नई दिल्ली।
६. मिश्रा, उमे"ा (1966). प्रगति वादी काव्य,ग्रन्थम प्रका"ान, कानपुर ।